विकास की वेदी पर श्रमिकों की बलि

राज्यों के श्रम अध्यादेशों पर डब्ल्यूपीसी का बयान

सारांश

कोविड-19 के कारण लॉकडाउन लगाए जाने के बाद भारत की सड़कों पर श्रमिकों की हृदयविदारक स्थिति देखकर हम मर्माहत हैं और हमें ज़्यादा पीड़ा इस बात से हुई है कि पहाड़ से लगने वाले इन दुखों के बीच मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश की सरकारों ने वर्तमान श्रमिक क़ानूनों को समाप्त करने का फ़ैसला किया है। इनके अलावा, कम से कम दस और राज्यों हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, ओडिशा, असम, महाराष्ट्र और उत्तराखंड ने आधिकारिक रूप से काम करने के घंटे को 9 से बढ़ाकर 12 कर दिया है।

इस पर अपने प्रत्युत्तर और साझा बयान में हम इन बातों को सामने रखना चाहते हैं-

- श्रमिकों के लिए यह बेहद आर्थिक मुश्किलों का समय है और श्रमिकों को आर्थिक गतिविधियों में शामिल होने के लिए वापस बुलाने का लाभ ऐसा हो जो अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के साथ-साथ श्रमिकों का भी भला करे। श्रमिकों के बिना किसी भी तरह का आर्थिक पैकेज सफल होने वाला नहीं है। वेतन सुरक्षा या श्रमिकों को काम पर लौटने के लिए काम करने के स्थल पर बेहतर सुविधा और बेहतर स्थिति के लिए किसी भी तरह का इंसेंटिव नहीं दिया गया है। वेतन का भुगतान नहीं किए जाने और रहने के लिए किराए के मकान के ज़्यादा महँगा होने जैसे दो मुख्य कारणों, जिसकी वजह से उन्हें तत्काल शहर से भागना पड़ा, का कोई हल नहीं सुझाया गया है।

- इसके बदले, संकट के इस समय में श्रम क़ानूनों में ऐसे बदलाव किए गए हैं जो श्रमिकों के हितों के ख़िलाफ़ हैं। जैसे उनके काम करने के घंटे पर लगी सीमा और ओवरटाइम के भुगतान के प्रावधान को समाप्त कर दिया गया है जो श्रमिकों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय क़ानूनों का उल्लंघन है। विशेषकर :

    - ऐसे समय में जब देश में स्वास्थ्य महामारी फैला है, कारख़ाना अधिनियम, 1948 के तहत कार्यस्थल पर पेशेगत सुरक्षा और स्वास्थ्य के प्रावधानों को समाप्त करना श्रमिकों के स्वास्थ्य को ख़तरे में डाल देगा साथ ही यह कोविड-19 से हमारी प्रभावी लड़ाई को भी कमज़ोर करेगा।

    - वेतन सुरक्षा से जुड़े प्रावधानों को हटाना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 और सुप्रीम कोर्ट के कई संविधान पीठों के इस बारे में फ़ैसलों का सीधा-सीधा उल्लंघन है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने इलाहाबाद हाईकोर्ट के नोटिस के बाद 12 घंटे की शिफ़्ट के कठोर प्रस्ताव को वापस ले लिया है। यह उन राज्यों को महत्त्वपूर्ण संकेत है कि इस तरह के ग़ैरक़ानूनी और असंवैधानिक क़दमों को कामगार बर्दाश्त नहीं करेंगे। अन्य समस्याओं को देखते हुए यह एक बहुत ही छोटी जीत है पर ऐसा सिर्फ़ विभिन्न श्रमिक संगठनों के लगातार अथक प्रयास के कारण ही सरकार इसे वापस लेने को बाध्य हुई है।

अध्यादेश की मदद लेकर इन उल्लंघनों को "तात्कालिक क़दम" बताकर इनको सही बताना अनैतिक है। इस तरह के क़दमों को कानूनी रास्तों और कठोर वैधानिक जाँच की कसौटी पर आवश्यक रूप से कसा जाना चाहिए। हम इस बात को दुहराते हैं कि देश की आर्थिक व्यवस्था को पटरी पर तभी लाया जा सकता है जब यह श्रमिक और नियोक्ता दोनों के हितों में है और श्रमिकों के संरक्षण, उनकी सुरक्षा, उनके अधिकारों को समाप्त करके इसे हासिल करने की बात कभी सफल नहीं होगी। अगर हम इसके ख़िलाफ़ तुरंत और पूरे मनोयोग से खड़े नहीं होते हैं, तो हमें डर है कि भारत को ऐसी सामाजिक अराजकता का सामना करना पड़ सकता है जो उसने आज़ादी के बाद इससे पहले कभी नहीं देखी है।

ऊपर में जो बात कही गई है उसको नीचे विस्तार से बताया जा रहा है;

वर्किंग पीपुल्स चार्टर

पूर्ण बयान

भारत का श्रम क़ानून सिर्फ़ कामगारों के आंदोलनों का ही नतीजा नहीं है बल्कि इस आर्थिक सबूत के भी परिणाम हैं कि कामगारों को बुनियादी सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराने से आर्थिक विकास में स्थायित्व और निरंतरता बनी रहती है। काम करने की असमान और असुरक्षित स्थिति से समाज पर बहुत ज़्यादा सामाजिक-आर्थिक दबाव पड़ता है क्योंकि यह मौजूदा स्वास्थ्य, शिक्षा, आजीविका सामाजिक दुहस्थिति को और बढ़ा देता है। इस स्थिति के बनने के बाद राज्य इन मदों में अपने सीमित संसाधनों के बावजूद निवेश करने के लिए बाध्य होता है।

कुछ राज्यों ने जिन 'सुधारों' की घोषणा की है उसके माध्यम से उन्होंने श्रमिकों के काम करने की स्थिति और उनके काम करने के अधिकतम घंटे में बदलाव किया है, पर कुछ राज्यों ने तो औद्योगिक संबंध अधिनियम के तहत सारे प्रावधानों को समाप्त कर दिया जिसमें ट्रेड यूनीयन अधिनयम और औद्योगिक विवाद अधिनियम भी शामिल हैं। यूपी सरकार ने जो बदलाव किए हैं वे सबसे ज़्यादा भयाभय हैं क्योंकि उन्होंने न्यूनतम वेतन अधिनियम के तहत संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक प्रावधानों को भी समाप्त कर दिया है और अब सरकार यह तय करेगी कि न्यूनतम मज़दूरी क्या होनी चाहिए। सबसे हैरानी की बात यह है कि कई दूसरे राज्यों ने ऐतिहासिक मातृत्व लाभ अधिनियम, जिसे अभी हाल ही में सरकार ने पास किया था, सहित अन्य बुनियादी सामाजिक सुरक्षा को भी समाप्त कर दिया है।

'सुधार' के नाम पर कारख़ाना अधिनियम, 1948 के महत्त्वपूर्ण प्रावधानों को समाप्त कर दिया गया है जिनमें काम करने के स्थल को लेकर की बुनियादी स्थितियों जैसे हवा आने की उपयुक्त व्यवस्था, प्रकाश, शौचालय, बैठने की व्यवस्था, प्रथम उपचार बॉक्स जैसी बातें शामिल हैं। श्रमिक काम के बीच शौचालय भी नहीं जाएँ और उन्हें काम करने के लिए उचित सुविधा भी नहीं दी जाए ये ऐसी बातें हैं जो हमें ज़्यादा हैरानी में डाल देती है क्योंकि जब वायरस महामारी फैली हो उस समय सरकार उन्हें ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध करा रही हैं जिसमें न तो वे अपनी स्वच्छता बनाए रख सकते हैं, ख़ुद को साफ़ नहीं रख सकते और इस तरह उनकी अपनी जिंदगी को तो ख़तरा होगा ही, वे अपने उत्पादों को भी संक्रमित करेंगे!

“आत्मनिर्भर” देश बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि हमारे कामगार भी स्वस्थ व सशक्त हों और आत्मनिर्भर बनें। उद्यमियों और निवेशकों के लिए काफ़ी सारी सहूलियतों की घोषणा की गई है, श्रमिकों को किसी भी तरह की सुरक्षा देने की इनमें कोई चर्चा नहीं है और राज्य सरकारें विपरीत दिशा में जा रही हैं जिसके तहत वह श्रमिकों की सुरक्षा और उनके अधिकारों को समाप्त कर रही हैं।

संरक्षण की समाप्ति और श्रम क़ानूनों में ढील के विपरीत परिणाम होंगे

श्रमिकों के लिए कई महत्त्वपूर्ण संरक्षणों को ऐसे समय में समाप्त किया गया है जब वाईज़ैग में गैस रिसाव की दुर्घटना हुई है जो भोपाल गैस त्रासदी की याद दिला गयी जिसमें जानमाल की हानि के अलावा पर्यावरण को भारी नुक़सान पहुँचा था। किसी भी तरह की वैधानिक सुरक्षा की अनुपस्थिति में, अब नियोक्ताओं के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि वे अपनी फ़ैक्ट्री में सुरक्षा के किसी नियम का पालन करें और फिर किसी औद्योगिक दुर्घटना होने की स्थिति में उन्हें किसी भी तरह का कोई मुआवज़ा भी नहीं देना होगा। यह कोरोना वायरस के ख़िलाफ़ लड़ाई नहीं है बल्कि यह वर्ग संघर्ष है जिसमें उद्योगपतियों के हितों के आगे ग़रीब श्रमिकों का शोषण कोई मायने नहीं रखता!

कोविड महामारी के इस दौर में, आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 की धारा 10(2) के तहत केंद्र सरकार और राज्य/केंद्र शासित प्रदेश अपने-अपने अधिकारक्षेत्रों के तहत श्रम क़ानूनों में बदलाव को हवा दे रही है। इसकी वजह से राज्यों में श्रम क़ानूनों को कमज़ोर करने की होड़ सी लग गई है। इससे भारतीय कंपनियों में एक अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाएगी और छोटे और मझौले उद्योग बाज़ार से अंततः ग़ायब हो जाएंगे क्योंकि तुलनात्मक लागत और तकनीकी उन्नति के क्षेत्र में वे प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं पाएँगे।

उद्यम विस्तार के हित में श्रम क़ानूनों में बदलाव एक मिथ और देश के लिए भ्रामक प्रचार है :

सरकार का दावा है कि इस तरह के संशोधनों से व्यवसाय को बढ़ावा और औद्योगिक विकास को बल मिलेगा जो कि महामारी के बाद देश की आर्थिक गतिविधि को पटरी पर लाने के लिए ज़रूरी है। पर जिस अर्थव्यवस्था की कमर पहले ही टूट चुकी है वह अगर गरीब और परेशानहाल श्रमिकों की कमज़ोर पीठ पर चढ़कर अपने ख़ुशहाली का रास्ता साफ़ करना चाहती है तो यह असमानता को बढ़ावा देनेवाला होगा और काम की स्थिति को ज़्यादा हिंसक बनाएगा।

ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस (ईडीबी) में भारत के 2016 में 130 वें स्थान से 2019 में 63 वें स्थान पर जाने की चर्चा करते पूरा व्यावसायिक समुदाय अघाता नहीं है। पर सच यह है कि इसकी ओर बढ़े हर क़दम ने भुखमरी, शांति, दासता, श्रमिकों और कामगारों के अधिकारों के क्षेत्र में भारत के पतन को सुनिश्चित किया है। ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस के परिदृश्य ने देश-विदेश के उद्योगपतियों और अन्य लॉबी के दबाव में इस पतन को नज़रंदाज़ किया गया है। यह लॉबी चाहती है कि देश के श्रम बाज़ार का विनियमन समाप्त कर दिया जाए और काम पर रखो-निकालो की नीति लागू कर दी जाए। वर्तमान क़ानून ने पहले से ही ठेकेदारी जैसी बेहद उत्पीड़क व्यवस्था को लागू कर रखा है जिसकी वजह से श्रमिक किसी भी तरह की मुश्किलों में टूटने की स्थिति में आ जाते हैं जैसा कि अभी हम देख रहे हैं। ये क़दम कारख़ाना अधिनियम की धारा 5 के तहत उठाए गए हैं जिसमें किसी तरह के सार्वजनिक आपातकाल की स्थिति में फ़ैक्ट्रियों को किसी भी तरह के प्रावधानों से छूट दी गई है। भारत ने आईएलओ के त्रिपक्षीय मानक अंतर्राष्ट्रीय श्रम परामर्श सम्मलेन, 1976 पर हस्ताक्षर किया है जिसके तहत उसे श्रम बाज़ार के बारे में कोई भी निर्णय लेने से पहले इससे जुड़े सभी पक्षों जैसे नियोक्ताओं और श्रमिकों की संस्थाओं से इस बारे में चर्चा करनी चाहिए। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है और लॉकडाउन की वर्तमान स्थिति में कामगारों और श्रम संगठनों की श्रमिकों को लामबंद करने की क्षमता काफ़ी सीमित हो गई है। मज़दूरी, पेशेवर सुरक्षा, औद्योगिक संबंध, और सामाजिक सुरक्षा के चार प्रमुख बिंदुओं पर इस विषय से जुड़े किसी भी पक्ष के

साथ कोई प्रभावी बातचीत नहीं की गई जिन्हें संसद में पेश किया गया था और इनमें से वेतन संहिता को संसद से मंज़ूरी मिल गई थी। इससे न्यूनतम मज़दूरी, कार्यस्थल पर सुरक्षा, सामूहिक मोलभाव और सामाजिक सुरक्षा के पीछे जो कल्याणकारी मंशा छिपी हुई थी उसे व्यवस्थित रूप से समाप्त कर दी जाएगी।

यूपी और मध्यप्रदेश में सभी तरह के श्रम क़ानूनों को वापस लेना ताबूत में अंतिम कील की तरह है विशेषकर असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए और यह बताता है कि सरकार असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों विशेषकर प्रवासी श्रमिकों के प्रति दुश्मन-भाव को जारी रखे हुए है। क़ानून के उल्लंघन की स्थिति में दंड के प्रावधानों को समाप्त करने के साथ-साथ पेशेवर सुरक्षात्मक मानदंडों को हटाने का अर्थ यह है कि असंगठित क्षेत्र के श्रमिक अपनी विकट अमानवीय दशा के ख़िलाफ़ किसी तरह की क़ानूनी कार्रवाई की सोच ही नहीं सकते हैं। इन श्रमिकों से लंबे समय से ख़तरनाक मशीनों, रासायनों के साथ काम लिया जा रहा है पर अब बेहतर स्थिति की माँग करते हुए वे अपनी इस स्थिति के ख़िलाफ़ किसी तरह की कानूनी कार्रवाई कर ही नहीं सकते। क़ानून के प्रशासन और सामाजिक अनुबंध जो कि श्रमिकों के अधिकारों को सुनिश्चित करते हैं, के अभाव में श्रमिकों को लेकर किसी भी तरह के न्यायविधान और सामूहिक विवेक का इतिहास समाप्त हो जाएगा। नव-उदारवादी पूँजी का निर्लज्ज सरकारीकरण, इस तरह से उन सभी बातों के ख़िलाफ़ है जो हमें संवैधानिक गारंटी के रूप में प्रिय हैं और जो इन श्रमिकों को न्यूनतम गरिमा उपलब्ध कराते हैं।

इतिहास से सबक़ लेना शायद पहले से कहीं ज़्यादा ज़रूरी हो गया है

भारत में ऐतिहासिक न्यायविधान ने उचित मज़दूरी को संवैधानिक अधिकार की ऊँचाई तक पहुँचाया है। इस तरह के अधिकारों के अभाव में हम दासों का श्रम बाज़ार बनाने की दिशा में बढ़ते जा रहे हैं क्योंकि न्यूनतम मज़दूरी का भुगतान नहीं करना संविधान के तहत अनुच्छेद 23 का उल्लंघन है जो कि दासता के बराबर है। राज्य ने औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत श्रमिकों से सामूहिक मोलभाव के अधिकार भी पूरी तरह छीन लिए हैं। इसका मतलब यह हुआ कि श्रमिक, संगठन और कार्यकर्ता अपने काम की स्थिति को लेकर कोई विरोध प्रदर्शन नहीं कर सकते या कार्यस्थल को सुरक्षित बनाने और बेहतर मज़दूरी के लिए संगठित मोलभाव नहीं कर सकते। क़ानूनी संरक्षण हटा लेने और मोलभाव के अधिकार छीन लेने से विशेषकर महिलाओं और बच्चों का शारीरिक और मानसिक शोषण बढ़ जाएगा।

हम इतिहास को झुठलाने के कगार पर पहुँच गए हैं और यह हमें ऐसे सामाजिक अराजकता की आग में झोंक देगा जिसका भारी नुक़सान होगा। यह ज़रूरी है कि हम दुनिया में पहले इतने ही बड़े संकट के बाद उठाए गए कदमों पर एक नज़र डालें।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विलियम बेवरिज आयोग का गठन हुआ था जिसको एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर माना जाता है। बेवरिज रिपोर्ट आदर्श से ओतप्रोत था और युद्ध से बुरी तरह क्षतिग्रस्त दुनिया में वह एक आदर्श समाज बनाने और एक बेहतर भविष्य की रचना के लिए कल्याणकारी क़ानून बनाने से प्रेरित था। इस रिपोर्ट में उन्होंने 'पाँच दानवों' को समाप्त करने की योजना प्रस्तुत की थी। ये दानव थे – अभाव (आज हम इसे ग़रीबी कह सकते हैं), बीमारी, अज्ञानता, गंदगी और बेकारी। इस सबके केंद्र में था सरकारी व्यवस्था के तहत आवश्यक बीमा की सुविधा। हर श्रमिक को अपने वेतन का एक हिस्सा देने की बात थी ताकि एक कोष तैयार हो जिससे उन लोगों की मदद की बात थी जो बीमार हैं, बेरोज़गार हो गए हैं या औद्योगिक दुर्घटना के कारण घायल हो गए हैं। इस योजना के तहत कर्मचारियों और स्व-रोज़गारवाले लोगों को उनके कार्य जीवन के अंत में पेंशन देने की बात थी। इसका उद्देश्य श्रमिक के परिवार को मदद करना था। सभी के लिए इन वित्तीय सुरक्षा प्रावधानों के साथ-साथ सबको शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराने की बात भी थी। कल्याणकारी राज्य की भूमिका के तहत इनके लिए राशि कर के रूप में वसूली गई राशि से आनी थी और उपयोग के समय इसके मुफ़्त होने का प्रावधान था। यह ज़रूरी है कि इस तरह के वैश्विक संकट के बाद हम इस समस्या का हल निकालें न कि इससे

और गंभीर बनाएँ। पर हम इस देश को कहीं ज़्यादा मुश्किलों और अकल्पनीय अव्यवस्था में धकेलने जा रहे हैं। बेवरिज रिपोर्ट ने ईएसआईसी और ईपीएफओ के रूप में भारत में प्रगतिकामी नए बदलाव का आग़ाज़ किया और इस समय पीछे जानेवाला क़दम उठाने के बजाय हमें इससे प्रेरणा लेनी चाहिए।

यह ज़रूरी है कि हम थोड़ा और पीछे जाएँ और वर्तमान के संघर्षों को याद करने की कोशिश करें। रॉयल कमीशन ऑफ़ लेबर रिपोर्ट के दिनों में 1925 में जब देश में ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन था, आंबेडकर ने सामूहिक मोलभाव के अधिकार और श्रमिक संगठनों की बात को आगे बढ़ाया था। उन्होंने औपनिवेशिक सरकार के समय में भी इस तरह के ज़रूरी श्रम सुधारों की बात की। इस बात को 100 वर्ष होने वाले हैं और हमें भारत के श्रम क़ानून और उसके योगदान को याद करना चाहिए। ये क़ानून श्रमिक वर्गों, दलितों और गरीब लोगों के संघर्ष के परिणाम थे। आज हमें अपने अधिकारों की रक्षा के लिए इस इतिहास को आवश्यक रूप से याद करना चाहिए।

निष्कर्ष

संकट के ऐसे समय में जब लाखों लोगों की आजीविका और मज़दूरी पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं, यूपी और मध्यप्रदेश सरकारों के लिए श्रम सुधार क़ानून लागू करना प्राथमिकता में सबसे ऊपर है जबकि जीईआर, एचडीआई जैसे विभिन्न सामाजिक-आर्थिक सूचकांकों के मोर्चे पर इनका प्रदर्शन राष्ट्रीय औसत से भी काफ़ी नीचे रहा है। श्रम बाज़ार में प्रमुख श्रम क़ानूनों में संशोधन कर सुधार लाने से संगठित क्षेत्र को भी असंगठित बनाने का अभियान जोर पकड़ लेगा और इससे श्रम बाज़ार की सुरक्षा जैसे रोज़गार, स्वास्थ्य और सुरक्षा, कौशल, आय आदि कमज़ोर पड़ जाएगी। जब नियोक्ताओं का हित साधने के लिए यूपी और मध्यप्रदेश ने अपने क़ानूनों को संशोधित किया तो उन्होंने ऐसा करके औद्योगिक लोकतंत्र में शोषण की जड़ को और ज़्यादा गहरे तक जाने की इजाज़त दे दी और श्रमिकों को ज़्यादा ऊँचे स्तर की असुरक्षा की ओर धकेल दिया। राज्य के हाथों में इस तरह का मनमाना अधिकार जिसके ख़िलाफ़ किसी भी फ़्रंट पर कोई सुनवाई नहीं हो, राज्य और समाज को अमानवीय बनाने की ओर बढ़ाया गया एक क़दम होगा।

वर्किंग पीपुल्स चार्टर

नई दिल्ली

workerscharterprocess@gmail.com